





विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P5: भाषाविज्ञान
इकाई सं. एवं शीर्षक	M32: शैलीविज्ञान
इकाई टैग	HND_P5_M32

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	प्रो. गिरीश्वर मिश्र
	कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>misragirishwar@gmail.com</u>
प्रश्नपत्र समन्वयक	डॉ. उमाशंकर उपाध्याय
	पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद्यापीठ
	महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>usupadhyay@gmail.com</u>
इकाई-लेखक	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी
	पूर्व प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, दिल्ली
	ईमेल : <u>kkgoswami1942@gmail.com</u>
इकाई समीक्षक	डॉ. उमाशंकर उपाध्याय
	पूर्व प्रोफेसर, भाषा विद् <mark>यापीठ</mark>
	महात्मा गांधी <mark>अंतरराष्ट्रीय हिंदी वि</mark> श्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>usupadhyay@gmail.com</u>
भाषा संपादक	प्रो. गिरीश्वर मिश्र
	कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001
	ईमेल : <u>misragirishwar@gmail.com</u>
<b>पाठ का प्रारूप</b> 1. पाठ का उद्देश्य 2. प्रस्तावना	*O
<mark>पाठ का प्रारूप</mark>	ay to
1. पाठ का उद्देश्य	No.
2. प्रस्तावना	
0 0 0 0	

## पाठ का प्रारूप

- पाठ का उद्देश्य 1.
- 2. प्रस्तावना
- भाषा और शैली 3.
- शैली की आधुनिक अवधारणाएँ 4.
- शैलीविज्ञानः स्वरूप और क्षेत्र 5.
- शैलीविज्ञान का विकास 6.
- "सोन मछली" कविता का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण 7.
- निष्कर्ष 8.

HND : हिंदी	P5: भाषाविज्ञान	
	M32: शैलीविज्ञान	







## 1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप -

- भाषा-शैली का अर्थ समझ सकेंगे;
- शैली की अवधारणा जान सकेंगे;
- शैलीविज्ञान के स्वरूप और क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे;
- शैलीविज्ञान के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- साहित्यिक कृति का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण कर सकेंगे।

#### 2. प्रस्तावना

भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अंतरानुशासनिक अध्ययन के संबंध में शैलीविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें भाषाविज्ञान और साहित्यिक आलोचना के शोधकार्य में कई दृष्टिकोण सामने आए, किंतु इनमें किसी एक दृष्टि से सार्थक और अपेक्षित मूल्यांकन तथा अध्ययन नहीं हो पाया। हाँ, यह अवश्य हुआ कि शैलीविज्ञान और उसकी अध्ययन प्रणाली के विकास से कई प्रश्न उभर कर आए। शैली क्या है, शैलीविज्ञान क्या है, शैलीविज्ञान का क्षेत्र क्या है, शैलीविज्ञान के भाषापरक और साहित्यिक संदर्भ से क्या संबंध है और उनमें अंतर क्या है? साहित्य के अध्ययन में शैलीविज्ञान की क्या अप्रिक्त है और क्या शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की क्या उपादेयता है? भाषा के अध्ययन में शैलीविज्ञान की क्या भूमिका है और क्या शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान का अनुप्रायोगिक पक्ष है आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिनपर विचार करने की आवश्यकता है। इसीलिए इस पाठ में शैली और शैलीविज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उसके सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों का विवेचन किया जा रहा है। वास्तव में शैलीविज्ञान के विकास के आधार भारतीय काव्यशास्त्र परंपरा और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र परंपरा हैं। अमरीकी नव्य समीक्षा तथा अन्य यूरोपीय समीक्षा पद्धतियों से विकसित होकर यह भाषाविज्ञान के अनुप्रयोग के रूप में उभर कर आई। यह साहित्य के आलोचनापरक प्रतिमानों का वह भाषापरक अध्ययन है, जिसके एक ओर शैली के साक्ष्य पर साहित्यक कृति की संरचना और बुनावट का विवेचन होता है और दूसरी ओर कृति में निहित साहित्यकता और सर्जनात्मकता का उद्घाटन होता है।

### 3. भाषा और शैली

मनुष्य सृजनशील प्राणी है। वह संदर्भों, स्थितियों और उद्देश्यों में विभिन्न प्रकार से भाषा का प्रयोग करता है। भाषा के ये प्रकार विविधता लिए हुए होते हैं। यह विविधता और विषमता काल-विशेष, स्थान-विशेष, समाज विशेष, व्यक्ति-विशेष, विधा-विशेष, और प्रयुक्ति-विशेष आदि के कारण पाई जाती है। काल-विशेष में भाषा के विकास-क्रम के विभिन्न चरणों में भाषा के कई रूप मिलते हैं; जैसे- पुरानी हिंदी और आधुनिक हिंदी अथवा छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि के हिंदी-रूप। स्थान-विशेष में विभिन्न क्षेत्रों के भाषा-प्रकार अर्थात् अवधी, भोजपुरी, खड़ीबोली आदि बोलियाँ देखी जा सकती हैं। समाज-विशेष में समाज के विभिन्न वर्गों और स्तरों - शिक्षित और अशिक्षित, उच्च वर्ग और निम्न वर्ग आदि की शैलियाँ दिखाई देती हैं। व्यक्ति-विशेष में गांधी, नेहरू, निराला, पंत, रामचंद्र शुक्ल आदि की विशिष्ट शैलियाँ मिलती हैं। विधा-विशेष में उपन्यास, नाटक, कहानी आदि में भाषा के अलग-अलग रूप मिल जाते हैं। प्रयुक्ति-विशेष में विशिष्ट कार्यक्षेत्रों और विषयक्षेत्रों के भाषा-भेद अर्थात् कार्यालयीन, वाणिज्यिक, तकनीकी आदि शैलियाँ मिलती हैं। इस प्रकार मनुष्य की भाषा में जो विविधताएँ पाई जाती हैं उन्हें भाषा की शैलियाँ कहा जाता है। यद्यपि ये भाषा-भेद एक-दूसरे से भिन्न हैं किंतु अलग-अलग उद्देश्यों, संदर्भों और स्थितियों में अभिव्यक्ति की अलग-अलग रीति होने के कारण ये शैली कहलाते हैं।







# 4. शैली की आधुनिक अवधारणाएँ

गत कई वर्षों से भाषाविज्ञान में साहित्य के इतर अंगों की अपेक्षा भाषाविषयक चिंतन को अधिक महत्व दिया गया है। इससे पहले साहित्य का अध्ययन व्यक्तिगत और आत्मनिष्ठ आधार पर होता था, अतः वस्त्निष्ठ और वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई। अब शैलीविषयक विवेचन में भाषा के सभी पहल्ओं पर विचार किया गया जो वक्ता या लेखक की प्रकृति तथा उसके द्वारा प्रयुक्त आलंकारिक रूपों और वाक्यात्मक अभिरचनाओं की सूचना देते हैं। इस संदर्भ में शैली की विभिन्न परिभाषाएँ दी गई हैं, जो भारतीय साहित्यशास्त्र और पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर आधारित है। अंतर है केवल विश्लेषण के स्तर में। चूँकि प्रत्येक य्ग की अपनी संभावनाएँ और विशेषताएँ होती हैं और उसमें भावबोध तथा दृष्टिकोण को समेट कर एक समग्र दृष्टिकोण देने का प्रयास होता है। फिर भी, शैली की कोई निश्चित परिभाषा अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाई। शैली संबंधी कई अवधारणाएँ मिलती हैं। पहली है, शैली विचारों के आवरण के रूप में केंद्रीय विचार या अभिव्यक्ति के साथ एक अतिरिक्त तत्व ज्ड़ा ह्आ है, जिसका प्रयोग विचार को प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने के लिए किया जाता है। यही शैली है। दूसरी है, शैली व्यक्ति-वैशिष्ट्य के रूप में वास्तव में कवि का व्यक्तित्व ही उसकी शैली का उत्पादक होता है। इसी के आधार पर ब्युफों ने 'शैली ही व्यक्ति है' की धारणा प्रस्तुत की और इसीलिए विद्वानों ने व्यक्ति-केंद्रिकता पर शैली का विवेचन किया है। लेखक एवं वक्ता की भाषा विशेष प्रयोजन, घटना, परिस्थिति, स्वभाव एवं प्रकृति, बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर आदि पर काफी निर्भर रहती हैं, क्योंकि उसकी अन्भृति और अनुभव उसके वास्तविक जीवन से जुड़े होते हैं और यहीं से उसके व्यक्तित्व की झांकी मिल जाती है।तीसरी शैली को अलंकार के रूप में माना गया है। इस दृष्टि से शैली भाषा-व्यंजक और अभिधायक तत्त्वों के संयोजन से <mark>बनती है।</mark> भा<mark>षा</mark> के उन अभिलक्षणों से शैली का जन्म होता है, जिनसे लोकोत्तर चमत्कार की सृष्टि होती है।

कवि की सर्जनात्मक शक्ति भाषा की सर्ज<mark>नात्मक शक्ति है</mark> और इसीलिए वह मानक का अतिक्रमण करती हुई चलती है। यह विचलन या अतिक्रमण <mark>व्याकर</mark>ण की दृष्टि से चाहे सही न हो लेकिन ग्राह्यता अथवा स्वीकार्यता की दृष्टि से अ<mark>वश्य सही होता है। इसका संबंध</mark> व्याकरण से नहीं होता, बल्कि भाषा-भाषी सम्दाय की भाषा-चेतना से होता है जो इसे समझता है और सहज रूप से स्वीकार करता है। 'कलियाँ खिलखिला रही हैं' और 'चाँद म्स्करा रहा है' वाक्यों में <mark>'कली और चांद' का मानवीकरण प्रयोग और 'रमा बह</mark>त चहक रही है' वाक्य में 'रमा का पक्षीकरण-प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से चाहे सही न हो, लेकिन संदर्भ में ग्राह्य है और प्रतिमान से विचलन है। इसी में अतिरिक्त अर्थ की प्राप्ति होगी। वास्तव में भाषायी विचलन संप्रेषण की सामान्य प्रक्रिया का विच्छेदन है। यह विषय के प्रकार, प्रस्तृतीकरण के उद्देश्य, पाठ के गुणों तथा लेखक के व्यक्तित्व से अभिप्रेरित होता है। इसीलिए भाषा के प्रतिमान से विचलन को शैली कहा गया है जो शैली की चौथी अवधारणा है। पाँचवी अवधारणा में शैली को चयन के रूप में स्वीकार किया गया है। इसमें भाषा को साहित्यकार के उपादान के रूप में माना गया है। साहित्यकार अपनी सृजन-प्रक्रिया में एक विशेष भाषा का चयन इस प्रकार करता है, जिस प्रकार मूर्तिकार एक पाषाण से व्यर्थ की चिप्पियां हटाकर मूर्ति का निर्माण करता है। जब कवि सृजन-प्रक्रिया से ग्जर रहा होता है तो उसके सामने शब्द और संरचना-संबंधी कई विकल्प होते हैं। वह उनमें से श्रेष्ठ रूपों का चयन कर लेता है। सामान्य रूप से सामान्य अर्थ रखने वाले अनेक शब्दों से सर्वोपयुक्त शब्द का चून लेना ही अच्छी शैली है। अतः पूर्वनिर्धारित विषय-वस्त् को अथवा उससे संबद्घ विभिन्न अर्थों को सही अभिव्यक्ति देने वाले भाषिक साधनों का चयन ही शैली है।शैली को वाक्योपरि भाषायी विशेषताओं के सम्च्यय के रूप में मानना भी छठी अवधारणा है। वाक्य को अब तक भाषा की आधारभूत तथा अधिकतम इकाई माना जाता रहा है और इसी के आधार पर भाषा का अध्ययन होता रहा है किंत् शैली का ऐसा अभिलक्षण है जो वाक्य की सीमा को पार कर जाता है। यह वाक्योपरि संरचना है जिसमें दो या उससे अधिक

HND : हिंदी P5: भाषाविज्ञान

M32: शैलीविज्ञान







वाक्यों का परस्पर संयोजन होता है। यह एक प्रकार का अंतरवाक्य है, जिसे जोड़ने से समूचे पाठ की अन्विति होती है और वह वाक्योपरि संरचना होती है।

शैली की इन धारणाओं पर विचार किया जाए तो मालूम होता है कि इनमें कोई तात्विक अंतर नहीं है, अंतर है तो इनके दृष्टिकोण में। वस्त्तः सृजन और संप्रेषण की प्रक्रिया के संदर्भ में शैली का निर्धारक तत्व चयन ही मिलता है, क्योंकि चयन तथा उसकी व्यवस्था केवल कोशीय तथा व्याकरणिक न रहकर भाषा के विभिन्न स्तरों में होती है। अतः चयन-सिद्धांत की परिभाषा व्यापक करनी होगी, जिसके अंतर्गत साहित्यिक धारा का दबाव, विधा का दबाव तथा विषय-वस्त् का दबाव निहित रहेगा। साहित्यिक धारा की दृष्टि से भाषा के विभिन्न प्रयोग मिलते हैं; जैसे-छायावादी काव्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का आधिक्य है तो प्रगतिवादी काव्य में देशज शब्दों का। विधा की दृष्टि से विभिन्न विधाओं में विभिन्न भाषा-प्रयोग आते हैं। विषय-वस्त् की दृष्टि से वैज्ञानिक साहित्य, वाणिज्यिक साहित्य, कार्यालयीन साहित्य, जनसंचार संबंधी साहित्य आदि में भाषा का अलग-अलग चयन होता है। कभी-कभी व्यक्ति को अपनी प्रकृति या आदत भाषा में दिखाई दे जाती है, जैसे पीछे हमने शैली को व्यक्ति-वैशिष्ट्य के रूप में कहा है। इसीलिए कभी-कभी लिंग की दृष्टि से - प्रुष की शैली में कठोरता, गंभीरता, पौरूष आदि के दर्शन अधिक होते हैं, जबिक नारी की शैली में कोमलता, माध्यं, नारी-स्लभ सौन्दर्य की झलक अधिक मिलती है। आयु की दृष्टि से यौवनकाल की रचनाओं में जितनी अधिक चंचलता, स्वच्छंदता एवं रोमांस अधिक दिखाई देगा, वृद्धावस्था की रचनाओं में उतनी ही अधिक गंभीरता, प्रौढ़ता, नैतिकता और परं<mark>परा के</mark> दर्शन होंगे। यहाँ यह भी उल्लेख करना उचित होगा कि कभी-कभी ये बातें विपरीत रूप में भी <mark>मिल जाती</mark> हैं। साहित्यकार के भाषिक चयन, भाषिक व्यवस्था, व्यक्तिपरक तथा परिस्थितिम्लक अतिक्रमण में शैली का संयोजन होता है। वक्ता या लेखक अपनी अन्भृति को उसी रूप में अभिव्यक्त करने के लिए भाषा के निर्धारित रूपों का सप्रसंग, साभिप्राय एवं सम्चित चयन करता है। भाषा को नए रूप में ढालता <mark>है, संवारता है, नए</mark> शब्दों का निर्माण करता है, नई संरचना प्रदान करता है, नए परिवर्तन लाता है तथा उसे <mark>ट्याप</mark>क आयाम में समेटता है। यही उसका अभिव्यंजना-व्यवहार है जो शैली कहलाता है<mark>। वस्त</mark>्तः शैली भाषा क<mark>ा वह विशिष्ट</mark> रूप है जिसमें अभिव्यंजना की ऐसी शक्ति निहित रहती है, जो वक्ता या लेखक के सर्जनात्मक प्रयोग को रसान्कूल और प्रभावोत्पादक बनाती है। इस प्रकार शैली वह है जिसमें साहित्यकार <mark>या वक्ता अ</mark>पनी अन्भृति और अन्भव का सामान्यीकरण कर उन्हें दूसरों तक संप्रेषित करना चाहता है। इसके लिए वह एक ऐसी विशिष्ट भाषा का प्रयोग करता है, जिसमें सुष्ठु तथा साभिप्राय चयन होता है और ध्वनि, व्याकरणिक ग<mark>ठन तथा वाक्</mark>य-रचना आदि की दृष्टि से भाषा के सर्वस्वीकृत मानक का अतिक्रमण करता है।

## 5. शैलीविज्ञानः स्वरूप एवं क्षेत्र

भारत में साहित्य का सृजन प्राचीनकाल से चला आ रहा है और साथ ही साहित्य के विवेचन और विश्लेषण की परंपरा भी प्रारंभ से चली आ रही है। साहित्य को समझने के लिए और उसकी व्याख्या के लिए भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में कई संप्रदायों और सिद्धांतों का प्रादुर्भाव हुआ। आधुनिक काल में आलोचना के कई प्रतिमानों और पद्धतियों का विकास हुआ। इनमें रसवादी, मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, समाजशास्त्रीय, मिथकीय, ऐतिहासिक आदि आलोचना की कई प्रणालियों उभर कर आई। वास्तव में इन आलोचना-प्रणालियों में साहित्यिक कृतियों के बाह्य संबंधों की खोज की जाती रही है। इनमें पाठक या साहित्यकार की दृष्टि से अथवा समाज या संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में काव्य का मूल्यांकन होता रहा है। ये साहित्येतर उपादान हैं जो साहित्येतर मूल्यों का प्रतिपादन करते हैं, क्योंकि सामाजिक प्रक्रिया के बदलने से पाठक की संवेदनाओं, मान्यताओं और विचारों में







परिवर्तन आ जाता है जिससे मूल्यों पर भी प्रभाव पड़ता है। इसी कारण आलोचना के निश्चित सिद्धांत अभी तक स्थापित नहीं हो पाए।

शैलीविज्ञान अभिव्यक्ति और कथ्य की समन्वित इकाई को भाषिक प्रतीक मानता है। यदि रूपिम, शब्द, पद, वाक्य आदि भाषिक प्रतीक हैं तो यह भी माना जा सकता है कि समूची कृति भी भाषिक प्रतीक है। इसी दृष्टि से शैलीविज्ञान अभिव्यक्ति पक्ष के आधार पर कथ्य तक पहुँचने का प्रयास करता है। वास्तव में कथ्य और अभिव्यक्ति समन्वित इकाई के न तो दो स्तर हैं और न ही दो खंड; अपितु वे एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं। इस आलोक में तीन स्थितियाँ इस प्रकार होती हैं:

- 1. पहली स्थिति में अभिव्यक्ति कथ्य से अलग होती है और कथ्य की अपेक्षा अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया जाता है;
- 2. दूसरी स्थिति कथ्य अभिव्यक्ति से अलग होकर सामने आता है; और
- 3. तीसरी स्थिति साहित्यिक कृति में कथ्य और अभिव्यक्ति अभिन्न रूप में प्रतिफलित होते हैं।

इस दृष्टि से साहित्यिक कृति अनुभूतिजन्य संरचना है जिसके सर्जनात्मक और कलात्मक प्रयोगों का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। साहित्य की संरचना, संघटना और प्रकार्य का अध्ययन करने से सौंदर्यबोध होता है। इसीलिए इसकी सैद्धांतिक मान्यताएँ भाषापरक मानी गई हैं। भाषापरक होने के कारण शैलीविज्ञान साहित्यिक कृति को स्वायत 'शाब्दिक कला' मानता है और उसका विषय होता है 'साहित्य या काव्य क्या कहता है' न कि 'कवि क्या कहता है' और न ही 'साहित्य की रचना करते समय कवि का प्रयोजन क्या था' और न ही उस कृति से पाठक के मन पर क्या प्रभाव पड़ता है अथवा पड़ेगा। शैलीविज्ञान साहित्य का विश्लेषण न तो साहित्यकार या पाठक की दृष्टि से करता है और न ही सामाजशास्त्रीय या दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में। वह तो काव्यात्माकता और सर्जनात्मकता का केंद्र बिंद् भाषा को ही मानता है।

इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि साहित्यिक कृति का संसार बाहय यथार्थ संसार से अलग होता है, लेकिन सर्जना एवं कल्पना के आधार पर अभिव्यक्ति और कथ्य दोनों में अन्विति होती है। इसमें यथार्थ को हू-ब-हू प्रतिबिंबित नहीं किया जाता वरन् उसका सर्जन किया जाता है। साहित्यकार की सर्जनात्मक शक्ति के कारण यह एक कलाप्रतीक के रूप में रूपांतरित होती है। इसमें समाज, संस्कृति, मनोविज्ञान, दर्शन आदि को साहित्य के संदर्भ में जानना ही श्रेयस्कर है। 'साहित्यिक कृति के भीतर का संसार उस जीवित संदर्भ को उपस्थित करता है, जिसके भीतर रहकर उसके पात्र क्रिया-कलाप करते हैं, अपनी परिस्थितियों से टकरा कर अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन या विकास करते हैं और उस समय की धारा को व्याख्यायित करते हुए जीवन को एक ऐसे स्थान और काल के साथ बांधते हैं जो स्थान और समय से एक ओर बंधा होने के कारण ठोस भी होता है और उससे मुक्त होकर समय और स्थान की सीमा का अतिक्रमण भी करता है। यही कारण है कि विभिन्न कालों और विभिन्न स्थानों पर जिस काव्यवस्तु का सर्जन होता है, उसे काल और स्थान की सीमाओं को तोड़कर पढ़ा और समझा जा सकता है। यह साहित्यिक कृति के भीतर का ही संदर्भ है जो आज भी अंतर्निहित संसार को रूपायित करता है। साहित्यिक कृति के भीतर के इसी संदर्भ का विश्लेषण एवं अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। आलोचना के क्षेत्र में अब तक मार्क्सवादी, मनोविश्लेषणवादी, प्रभाववादी, नैतिकतावादी आदि जो भी आलोचनाएँ होती रही हैं अथवा हो रही हैं, वे या तो सिद्धां की ही व्याख्या करती रही हैं या व्यावहारिक विधियों के आधार पर साहित्यक कृति के बाह्य यथार्थ के साथ संबंधों का विवेचन करती रही हैं।







### 6. शैलीविज्ञान का विकास

शैलीविज्ञान का अविभाव बीसवीं षताब्दी में जेनेवा स्कूल के सुप्रसिद्ध भाषाविज्ञानी चाल्रस बेली द्वारा हुआ। बेली को इसकी संकल्पना अपने गुरू फर्दिनांद सस्यूर के 'भाषा और वाक्' दो द्विचर शब्दों से प्राप्त ह्ई। भाषा सार्वजनिक एवं परंपरागत व्यापार है तथा सम्दाय के लोगों में सामाजिक संपर्क स्थापित करने की एक पद्धति है, जो एक दूसरे की बात समझने-समझाने के लिए सहायक हो सकती है। वास्तव में यह एक सामाजिक वस्त् है, जो अपनी प्रकृति में समरूपी होने के साथ-साथ जीवंत एवं परिवर्तनशील भी होती है। 'वाक् एक व्यक्तिगत उच्चार है तथा इच्छा एवं बुद्धि की एक ऐसी क्रिया है जिसमें व्यक्तिगत उद्देश्यों की पूर्ति होती है। यह एक प्रकार का भाषिक व्यवहार है जो विविध रूपों में उद्घाटित एवं प्रतिफलित होता हैं। इस प्रकार 'भाषा' एक संहिता है और 'वाक्' एक रीति है, जिसमें संहिता का प्रयोग किसी वास्तविक परिस्थिति में होता है अथवा यह एक ऐसा ढंग है जिसमें व्यक्ति विशेष-अपनी भाषा का प्रयोग सामान्य रूप में करता है। केवल वाक् में ही भाषा कार्यान्वित होती है जबकि वाक् भाषा की सामाजिक और सार्वजनिक व्यवस्था के बिना संभव नहीं है। सस्यूर ने वाक् को मूलाधार नहीं माना और न ही इसे प्रम्खता दी है। इसका वास्तविक अध्ययन उनके शिष्य चार्ल्स बेली ने किया है तथा वाक् को आधार मानकर बेली ने बताया कि वैयक्तिक भाषा में भावनात्मकता निहित रहती है जो विशिष्ट परिस्थितयों में सहजभाव से मन्ष्य के उच्चारणोपयोगी अवयवों से निस्तृत है। वस्त्तः यह भावात्मकता भाषा में ऐसे मूल्य प्रस्तृत करती है जो शैली के मूल्य होते हैं। इन मूल्यों का अध्ययन शैलीविज्ञान करता है। इस प्रकार भाषा की अभिव्यक्तियों का व्यवस्थित अध्ययन उनमें निहित प्रभावकारी तत्वों के आधार पर करना अर्थात <mark>भाषा के</mark> माध्यम से होने वाली संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति का तथा संवदेनशीलता पर आधारित भाषा-व्यापार का अध्ययन करना शैलीविज्ञान का कार्य है।

बेली ने शैलीविज्ञान को भाषा के अभिव्यंजनात्मक पक्ष तथा उसकी प्रक्रिया का अध्ययन माना है। उनकी यह धारणा भाषा की तर्कपरक एवं प्रभावोत्पादक विशेषताओं पर पूर्णतया आधारित है। भाषा का तर्कपरक पक्ष, विचारों की अभिव्यंक्त, तथ्यों का संप्रेषण आदि सभी अमूर्त हैं। भाषा के मानक का अतिक्रमण 'प्रभावी' क्षेत्र में आ जाता है। इस प्रभावी शब्द का विस्तार करते हुए बेली ने प्रभावोत्पादक और अभिव्यंजनात्मक विशेषताओं को भी इसमें लिया है। वास्तव में भाषा एक सोद्देश्य व्यापार है और इसका प्रयोग किसी-न-किसी प्रयोजन के कारण होता है। अतः इसमें भावात्मकता, चाहे वह ऐच्छिक या सायास ही क्यों न हो, समान रूप से विद्यमान रहती है। शाब्दिक व्यवहार होने के कारण भाषा बिना किसी प्रेरणा के प्रस्फुटित नहीं होती और इस प्रेरणा में भी उद्देश्य निहित रहता है। अतः अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वक्ता उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है। इस दृष्टि से किया। एक शिष्य मारसेल क्रेसांट ने बेली के मत का खंडन करते हुए कहा कि हमारे लिए साहित्य साधारणतया एक संप्रेषण है और अपनी कृति में लेखक सींदर्य की जो मृष्टि करता है, उससे उसका अभिप्राय पाठक के ध्यान को पूरी तरह से आकर्षित करना है। यह बात सामान्य संप्रेषण से तो अधिक योजनाबद्ध एवं व्यवस्थित होती है किंतु यह अलग किस्म की नहीं होती। अतः शैलीविज्ञान के क्षेत्र में साहित्य भी उसी प्रकार उत्कृष्ट रूप में उभर सकता है। इस प्रकार क्रेसाट ने साहित्यक भाषा के भाषावैज्ञानिक अध्ययन को पूरी मान्यता दी है और साहित्यकार की भाषा का विश्लेषण भी किया है।

अब हम अज्ञेय की लघु कविता "सोन मछली" का संक्षिप्त विवेचन करेंगेः

हम निहारते रूप काँच के पीछे







हांप रही है मछली रूप-तृषा भी (और काँच के पीछे) है जिजीविषा ।

इस कविता में दो पद हैं जिनमें कार्य-कारण संबंध है। इस संबंध में दूसरा पद कारण है और पहला पद परिणाम है। भाषावैज्ञानिक आधार पर "हम निहारते रूप" में हम कर्ता या भोक्ता है। "रूप कर्मसूचक है। निहारते" 'में निहारना 'सकर्मक, स्थितिसूचक और आवृतिसूचक क्रिया है। इस में 'ते 'स्वभावसूचक पक्ष का संकेत कर रहा है। 'दूसरी ओर निहारना क्रिया मूल्यपरक और रीतिसूचक है जो किसी मनोरम वस्तु को एकटक मुक्त भाव से देखना है। निहारना क्रिया पर बल देने के लिए वह कर्म, रूप से पूर्व रखी है। "काँच के पीछे 'स्थानवाचक क्रियाविशेषण है। 'हांप रही मछली" में अकर्मक और स्थितिसूचक क्रिया है जिस का अर्थ तेजी से साँस लेना है और यह साँस लेना परिणामसूचक है। इस क्रिया में एक प्रकार का विचलन है क्योंकि हांपना मछली के साथ प्रयुक्त नहीं होता। हांपना पर बल देने के लिए पदक्रम में परिवर्तन कर क्रिया को पहले रखा गया है।

दूसरे पद में 'रूपतृषा' समस्तपद है जो रूप और तृषा के योग से बना है। "भी' निपात से अभिप्राय है कि इसके पीछे कुछ और है। (और काँच के पीछे) स्थानवाची क्रियाविशेषण है। "और" समुच्चयबोधक अव्यय किसी वस्तु की ओर ध्यान दिला रहा है। कोष्ठक में देने से अभिप्राय इस वाक्यांश का पहले पद में होना है। "है जिजीविषा" में रूपतृषा के साथ-साथ जीने की इच्छा का होना भी बताया गया है।

इस विवेचन से पता चलता है कि रूपतृषा और जिजीविषा किसी भी सजीव प्राणी में होती है न कि केवल मानव में। इसलिए पहले पद को दूसरे पद से जोड़ना आवश्यक है। यहीं पर शैलीवैज्ञानिक अध्ययन आरंभ होता है।

शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण में पाठपरक संसक्ति की ओर ध्यान दिया जाता है। इसके साहित्यिक संदर्भ को समझने के लिए समानांतरता और विचलन का आधार लेना होगा। ध्विन के स्तर पर इन पदों में समानांतरता दिखाई देती है। वाक्य के स्तर पर पहले पद के पहले वाक्य "हम निहारते रूप" और दूसरे पद में 'रूपतृषा भी" में समानांतरता है। दोनों पदों में 'काँच के पीछे" में समानांतरता है। दोनों पदों के तीसरे वाक्य 'हांप रही है मछली" तथा 'है जिजीविषा" में समानांतरता और विचलन है।

इस कविता के दो अर्थ निकलते हैं: पहला, हमारे भीतर जिजीविषा तो है ही, साथ में रूपतृषा भी है, इसीलिए हम रूप निहार रहे हैं। हम रूपतृषा के कारण संसार से अलग होकर मछली के केवल रूप को एकटक देख रहे हैं न कि उसका हांपना। साथ में हम में जीने की इच्छा भी है। दूसरा अर्थ यह है कि हममें रूपतृषा है और मछली में जिजीविषा है। वास्तव में काँच के पीछे हांपती मछली में जीने की इच्छा है, लेकिन हम मछली के हांपने के साथ-साथ मछली के रूप को भी निहार रहे हैं। इसका अभिप्राय यह निकला कि रूप बाहर की वस्तु है और जिजीविषा भीतर की। हम बाहय वस्तु पर तो आसक्त हैं किंतु भीतर से नहीं देखते। मछली और हम का यह दृष्टांत सहेतुक प्रयोग है।

कविता को कला प्रतीक के रूप में देखने से पता चलता है कि कविता की भाषा सांस्कृतिक संवेदना से ओत-प्रोत है। आधुनिक जीवन में हम अपने को बाहय वस्तु तक सीमित रखते हैं और आंतरिक संवेदना पर बल नहीं देते। हम







किसी के जीने की इच्छा की ओर तो देखते नहीं, बस बाहरी सभ्यता की चकाचौंध में रहते हैं। यही इस कविता का मूल भाव है।

### 8. निष्कर्ष

इस प्रकार शैलीविज्ञान का उद्भव भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अंतरानुशासनिक अध्ययन के रूप में हुआ है। विभिन्न संदर्भों, स्थितियों, प्रयोजनों और उद्देश्यों के अनुरूप भाषा के विभिन्न भेद दिखाई देते हैं। इन्हीं विभिन्न भाषा-रूपों को शैली कहा गया है। इसी शैली का अध्ययन भाषाविज्ञान के अनुप्रयोग के रूप में शैलीविज्ञान में होता है। शैलीविज्ञान भाषावैज्ञानिक सिद्वांतों, नियमों और प्रकार्यों के साथ-साथ साहित्यिक आलोचना के कलात्मक और सौंदर्यपरक पक्षों को भी अपने भीतर समेटता है। इस दृष्टि से शैलीविज्ञान भाषाविज्ञान की अनुप्रयोगिक विधा है, उसी के साथ आलोचना का भाषापरक प्रतिमान भी है जिसमें भाषावैज्ञानिक सिद्वांतों, नियमों और प्रकार्यों के साथ-साथ साहित्यिक आलोचना के कलात्मक और सौंदर्यपरक पक्ष भी निहित है।



HND : हिंदी P5: भाषाविज्ञान

M32: शैलीविज्ञान